मार्च १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

विवादं भयतो दिस्वा, अविवादं च खेमतो।
समग्गा सखिला होथ, एसा बुद्धानुसासनी ॥

विवाद में भय और अविवाद में कुशलक्षेम देखते हुए संघटित और मृदुभाषी रहे – यही बुद्धों का अनुशासन है।

– चरियापिटक-उदान १३.

ऐसे थे गुरुदेव!

विवाद से दूर

बुद्धशासन समिति की ओर से ऊ नू और ऊ छां ठुन अनेक लोगों को विपश्यना सीखने के लिए बर्मा आमंत्रित करते रहते थे। कभी कभी ऐसे कुछ लोगों के आने-जाने तथा बर्मा में रहने के खर्च के लिए किसी दायक को पुण्यभागी होने का अवसर देते थे। ऊ छां ठुन के सुझाव से मैं भी कुछ धर्मार्थियों का दायक बना। उनमें से एक व्यक्ति था ब्रह्मचारी श्री मुनींद्रनाथ बरुआ। वह बुद्धगया के मंदिर का सुपरिंटेन्डेन्ट था और बर्मा में कुछ अधिक समय रहकर परियत्ति और पटिपत्ति दोनों में पारंगत होना चाहता था।

इस कार्य के लिए वह बहुत योग्य पात्र था। उसने अनेक धर्माचार्यों के पास रहकर त्रिपिटक का और विशेषकर अभिधम्म का गहन अध्ययन किया। परियत्ति तथा पटिपत्ति के लिए कई महीने आदरणीय महसी सयाडो के ध्यान-केन्द्र तातना येइता में अभ्यास करता रहा। और भी अन्य अनेक प्रचलित साधना विधियों को सीखने के लिए अनेक भिक्षुयों के विहारों और सद्गृहस्थों के घरों में रहा।

सयाजी ऊ बा खिन की साधना के बारे में भी उसने मुझसे तथा अन्य अनेकों से बहुत प्रशस्तिभरे शब्द सुने थे। अतः बहुत चाहता था कि भारत लौटने के पूर्व यह विद्या भी सीखकर जाए। परन्तु गुरुजी उसे शिविर में लेने के लिए तैयार नहीं थे। तत्कालीन केअर टेकर सरकार के उपप्रधान मंत्री ऊ लुं बो जो कि गुरुजी के प्रिय शिष्य थे, उसकी शिफारिस करने आए। पर गुरुजी नहीं माने। मुनींद्रजी एक प्रकार से मेरे धर्म-अतिथि थे। अतः मैंने भी आग्रह किया। पर गुरुजी नहीं माने। कहते रहे कि इसने भिक्षुओं से विपश्यना सीख ली, अब मुझसे सीखने की क्या आवश्यकता है? जो सीखा है उसमें पके।

हुआ यूं कि उसके कुछ महीने पहले ही भारत का एक और धर्मार्थी भिक्षु महिन्द्र बुद्धशासन समिति के आमंत्रण पर बर्मा आया और किसी एक ध्यान केन्द्र में ध्यान सीखता रहा। कोई भारतीय निरामिष भोजी किसी केन्द्र में आकर ध्यान सीखता तो कभी-कभी उसे भारतीय निरामिष भोजन भिजवाने का सौभाग्य मुझे मिल जाता जाता। भिक्षु महिन्द्र को भी कभी कभी भोजन भेजा जाता रहा। इस बहाने उनसे कभी कभी मिलना भी होता रहा।

एक दिन ऊ छां ठुन ने सूचना भेजी कि मैं उनसे शीघ्र मिलूं। मिलने गया तो देखा कि उनकी मानसिक दशा बहुत बिगड़ी हुई है। वे अर्धविक्षिप्त जैसे हो गए हैं। मुझे बताया गया कि उन्होंने आत्महत्या का भी प्रयत्न किया। मुझे देखकर उन्होंने चीवर त्यागने और गृहस्थ-वस्त्र पहनने की आकुलता प्रगट की। मैंने आश्रम के अधिष्ठाता आचार्य भिक्षु की आज्ञा ली और भिक्षु महिन्द्र को अपने घर ले आया। कुछ दिनों की सेवा परिचर्या और बदले हुए वातावरण से उनकी मानसिक विक्षिप्तता दूर हुई। वे स्वस्थ हुए। तब साधना संबंधी बातें होने लगी। बातों बातों में उन्हें पता चला कि मैं भी विपश्यना करता हूं और मेरे गुरु सयाजी ऊ बा खिन हैं। यह सुनकर उनकी आंखों में चमक आ गई और आग्रह करने लगे कि मैं उन्हें शीघ्र अपने गुरु के पास ले जाऊं।

मैं उन्हें लेकर आश्रम पहुँचा। सयाजी को देखकर भिक्षु महिन्द्र हर्षविभोर हो उठे। मुझे भी यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि ये दोनों एक दूसरे के पूर्व परिचित हैं। भिक्षु महिन्द्र अपने गृहस्थ जीवन में बहादुर नाम से एक सिविल इन्जीनियर थे और बर्मा रेल्वे के एक अफसर थे। गुरुजी भी उन दिनों बर्मा रेल्वे के अकाउंट्स अफसर थे और इस प्रकार एक दूसरे को खूब जानते थे।

युद्ध पूर्व के दिनों एक दिन इन्जीनियर बहादुर घर छोड़कर कहीं चला गया। तब से उसका कोई अता पता नहीं था। लोगों ने उसे नौ छो के पास गोटाइक ब्रिज के नीचे तलहटी के जंगल की ओर जाते देखा और तब से गायब हो गया। साथियों और घरवालों ने खोज की। देखा कि उपत्यका में बहती तेज नदी के तट पर उसकी चप्पलें पड़ी हैं। अतः अनुमान लगाया कि उसने आत्महत्या कर ली अथवा किसी दुर्घटना का शिकार हो गया। वस्तुतः वह भटकता हुआ किसी विहार में पहुंचा और भिक्षु बन गया और भारत जा पहुँचा। युद्ध के पश्चात् विपश्यना सीखने के लिए पुनः भिक्षु महिन्द्र के रूप में बर्मा आया।

गुरुदेव ने अपने पुराने मित्र की सेवा करनी चाही। विपश्यना का मासिक शिविर लगने में अभी देर थी, परन्तु भिक्षु महिन्द्र के आग्रह पर उन्होंने अकेले उन्हीं के लिए एक विशेष शिविर तुरन्त लगाया। भिक्षु महिन्द्र बहुत श्रद्धा और उत्साह के साथ काम करने लगे। दस दिनों में उन्होंने बहुत लाभ उठाया। वह आश्रम से लौटकर आये, पर भारत रवाना होने के पहले अपने पूर्व परिचित ब्रह्मदेश का दर्शन करना चाहते थे और पुराने मित्रों से भी मिल लिया चाहते थे। अतः उत्तर बर्मा की यात्रा पर निकल पड़े।

भिक्षु महिन्द्र जहां-जहां गये पुराने मित्रों ने उन्हें घेर लिया और उनके अनेक सार्वजनिक प्रवचन हुए। अति उत्साह के कारण उन्होंने इन प्रवचनों में गुरुदेव द्वारा सिखाई गई विपश्यना की भरपूर प्रशंसा की। यहां तक तो बात ठीक थी। परन्तु वे इसके आगे बढ़े और जहां वे पहले विपश्यना सीखने गये थे उसकी बहुत निंदा की। वे अपने उत्साह में यह भूल गए कि गुरुदेव इसे कदापि पसंद नहीं करेंगे। उन्हें ऐसा न करने के लिए संदेश भेजा गया। पर वे नहीं माने।

यह सारा प्रसंग चर्चा का विषय बना। गुरुदेव को रंचमात्र भी नहीं सुहाया। बुद्धपुत्र कभी विवाद में नहीं पड़ते। वह तो विनम्र

भाव से जो विद्या उनके पास थी वह लोगों को सिखाते थे। इस प्रकार का तुलनात्मक वादविवाद उनके स्वभाव के विरुद्ध था। इसीलिए उन्होंने भविष्य के लिए यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि कोई व्यक्ति किसी अन्य आचार्य और विशेषकर किसी भिक्षु के ध्यान केन्द्र में जाकर किसी प्रकार की विपश्यना सीखकर आएगा तो वे उसे अपने शिविर में नहीं लेंगे ताकि इस प्रकार के प्रसंगों की पुनरावृत्ति होने की आशंका ही न रहे।

इसीलिए मुनीन्द्रजी को विपश्यना सिखाने के लिए वे कतई तैय्यार नहीं हुए। परन्तु जब मैं बर्मा से भारत आया तो पत्रों द्वारा मुनीन्द्रजी से मेरा सम्पर्क बना हुआ था। जब बोधगया में शिविर लगा तो मुनीन्द्रजी के अनेक परिचित लोग उसमें शामिल हुए और लाभान्वित हुए। इससे वह स्वयं बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इच्छा प्रगट की कि वे भी एक शिविर में बैठें। मेरे लिए धर्म-संकट था, जिसे स्वयं गुरुजी ने शिविर में नहीं लिया उसे मैं कैसे लूं भला? मैंने गुरुजी को पत्र लिखकर पूछा तो उन्होंने तत्काल स्वीकृति प्रदान कर दी। उन्होंने कहा भारत में कोई विवाद नहीं है। वहां जो चाहे उसे सिखा सकते हो। मुनीन्द्रजी के ऊपर से प्रतिबंध उठा। वे शिविर में शामिल हुए। पहले ही शिविर में इतने लाभान्वित हुए कि तुरंत गुरुदेव को भावभीना कृतज्ञता भरा पत्र लिखा। इसके बाद उन्होंने दो शिविरों का और लाभ उठाया।

इस घटना ने मुझे इस बात की छूट दे दी कि मैं चाहे जिसे विपश्यना सिखा सकता हूं। भले, किसी अन्य आचार्य से और कोई अन्य प्रकार की विधि सीखकर आया हो। हां, इस बात का तो मैंने अवश्य ध्यान रखा कि जो व्यक्ति विपश्यना को गंभीरता से नहीं लेता और आज यहां कल वहां भटकता ही रहता है, उसके इस भटकने के स्वभाव को बढ़ावा न दिया जाय। वह किसी एक विधि पर मन टिकाकर गंभीरतापूर्वक काम करे; ऐसा प्रोत्साहन दिया जाय।

एक और कठिनाई सामने आई। बम्बई में दो चार शिविर लगने के पश्चात् वहां रहने वाले एक सिंहली भिक्षु ने शिविर में सम्मिलित होने की इच्छा प्रगट की। मैं एक सामान्य गृहस्थ। किसी गृह त्यागी भिक्षु को कैसे सिखाऊं भला? मैंने पूज्य गुरुदेव से परामर्श किया। उन्होंने सिखाने की तत्काल छूट दे दी। भारत में कोई दूसरा विपश्यना सिखानेवाला था ही नहीं तो ये भिक्षु कहां से सीख पाएंगे? इसी छूट के कारण बहुत बड़ी संख्या में भारत निवासी भारतीय, बंगला देशीय, सिंहली, नेपाली, थाई, कम्बोडियन, लाओसी, विएतनामी, तिब्बती, जापानी और कोरियन भिक्षुओं ने इन शिविरों का लाभ लिया। नागपुर के एक शिविर में तो केवल बुद्धशासन में प्रव्रजित भिक्षु ही भिक्षु बैठे। श्रीलंका और नेपाल में शिविर लगे तो स्थानीय भिक्षुओं ने पूरा लाभ लिया। विनम्र भाव से इन भिक्षुओं की सेवा करके मेरा मन भी अत्यंत प्रसन्न हुआ।

इसी प्रकार अन्य सम्प्रदायों के गृहत्यागियों को भी विपश्यना सिखाने की छूट मिली तो बड़ी संख्या में जैन मुनि और साध्वियां, ईसाई पादरी और साध्वियां तथा हिन्दू संन्यासी और साध्वियां इस कल्याणकारी विद्या से लाभान्वित हो सके। खण्डाला के एक गिरिजाघर में जो शिविर लगा उसमें मुख्यतः जिसुइस्ट सम्प्रदाय के प्रमुख पादरियों और साध्वियों ने ही भाग लिया। इसी प्रकार दिल्ली और लाडनूं के जैन उपाश्रयों में चार शिविर केवल तेरापंथी जैन सम्प्रदाय के साधु और साध्वियों के लिए लगे। इस प्रकार सभी सम्प्रदाय के लोगों के लिए विपश्यना सीखने का रास्ता खुल गया।

एक और कठिनाई सामने आई। दो चार महीनों के बाद इन शिविरों में पश्चिम देशों के इक्के दुक्के लोग सम्मिलित होने लगे। सायंकालीन प्रवचन और सारे आदेश मैं हिंदी में ही देता। पर इन साधकों को अलग बैठाकर अंग्रेजी में बहुत संक्षेप में विधि समझा देता और मुख्य मुख्य दैनिक आदेशों को थोड़े से शब्दों में बता देता। धर्म की मूलभूत बातें इनकी समझ में आ जातीं। काम कैसे करना चाहिए? यह भी समझ लेते। कोई विशेष प्रश्न होता तो अंग्रेजी में उसका समाधान भी कर देता। परन्तु अंग्रेजी में बहुत बोलना मेरे लिए कठिन था, क्योंकि इस भाषा का ज्ञान सीमित था। विदेशियों में शनैः शनैः विपश्यना की बात फैलने लगी। साधकों की संख्या बढ़ने लगी। यह बहुत निष्ठा के साथ काम करते थे। अतः इन्हें सफलता भी बहुत मिलने लगी। बर्मा से आये एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ कि डलहौजी की हिल स्टेशन पर ठहरे हुए १०-१५ विदेशी लोगों के एक समूह ने उनके लिए वहां एक शिविर लगाने के लिए मुझे आग्रहपूर्वक आमंत्रण भेजा। केवल अंग्रेजी भाषियों का शिविर मैं कैसे चला पाऊंगा? अंग्रेजी में पूरा प्रवचन देना मेरे लिए असम्भव था। मैं तो केवल मैट्रिक तक पढ़ा हुआ। अपने व्यापार धंधे के लिए लोगों से बातचीत करने लायक अंग्रेजी का थोड़ा बहुत ज्ञान था। रंगून चैम्बर ऑफ कॉमर्स एन्ड इंडस्ट्रीज या अन्य ऐसी किसी संस्था के प्रमुख की हैसियत से जब कभी अंग्रेजी में भाषण देना पड़ा तो अपने सेक्रेटरी द्वारा सुधरवाकर उसका लिखा हुआ भाषण ही पढ़ा। बिना पढ़े धारा-प्रवाह भाषण कभी नहीं दे सका। अंग्रेजी शब्दों का मेरा शब्द-कोश सीमित था। धर्म समझाने के लिए गंभीर पर्यायवाची शब्दों का तो और भी अभाव। मैंने अपनी असमर्थता प्रगट की।

इन विदेशियों ने पूज्य गुरुदेव को रंगून पत्र लिखा और यह शिकायत की कि मैं उन्हें धर्म नहीं सिखा रहा। वे स्वयं १० दिनों के लिए बर्मा आ नहीं सकते। क्योंकि उन्हें ३ दिन से अधिक का वीसा नहीं मिलता। अतः ये धर्म से वंचित रह जाएंगे। गुरुजी ने तुरंत मुझे फोन किया। डलहौजी जाकर शीघ्र शिविर लगाने का आदेश दिया। मैंने भाषा संबंधी अपनी कठिनाई बतायी तो उन्होंने कहा धर्म मदद करेगा। मैं बिना झिझक चला जाऊं। मैं शिविर लगाने चला गया। शिविर आरंभ हुआ। पहली शाम केवल पन्द्रह मिनिट बोल सका। दूसरी शाम आध घंटे और फिर इसके बाद धारा प्रवाह बोलने लगा। सचमुच धर्म मदद करने लगा। सारी झिझक दूर हो गयी। इन अंग्रेजी भाषियों के निकट संपर्क में आते रहने से शब्दकोश भी बढ़ने लगा और उसके बाद तो हिंदी शिविरों की तरह अंग्रेजी शिविरों का तांता लग गया। कहीं कहीं एक ही शिविर में दोनों भाषाओं में अलग अलग प्रवचन होने लगे। अन्य आदेश तो द्विभाषीय होते ही थे।

यूं पूज्य गुरुदेव की कृपा हुई तो अंग्रेजी के माध्यम से विश्व भर के लोगों को विपश्यना सिखाने का रास्ता खुल गया।

धर्म पथिक, **स. ना. गो.**